असर 2017 का आकलन

पंक्तियों के बीच छिपे निहितार्थ

दिशा नवानी
अनुवाद-मनोज कुमार झा

''बियोंड बेसिक्स'' शीर्षक वाली 'असर' (ग्रामीण) 2017 के प्रकाशन के फलस्वरूप देश में शिक्षा की स्थिति को लेकर जैसा अंदाजा था वैसा ही शोर बरपा है। यहां एक प्रासंगिक संदर्भ बिन्दु के तौर पर इस रिपोर्ट का उपयोग करते हुए, शिक्षा में इतने बड़े पैमाने पर किए गए आकलनों में प्रस्तुत आंकड़ों के अध्ययन तथा व्याख्या की जो जटिलताएं होती हैं उन्हें रेखांकित किया गया है।

स्कूलों में बच्चों को क्या जानना चाहिए और वास्तव में वे क्या जानते हैं, के बीच मौजूद चकित करने वाली दरार के लिहाज से, 2005 से 'एनुअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट' (असर) सराहनीय कार्य करती आ रही है। अपने पुराने संवर्ग (14 से 18 वर्ष) की बुनियादी साक्षरता व गणनात्मक क्षमता के आकलन पर दोहरे फोकस के साथ ''बियांड बेसिक्स''' शीर्षक से असर (ग्रामीण) 2017 सर्वेक्षण सार्वजनिक हो चुका है। यह उन गतिविधियों की पड़ताल भी करता है जिनमें छात्र संलग्न थे। इसके अलावा क्षमताओं (रोजमर्रा की स्थितियों में आधारभूत कुशलताओं के उपयोग), आकांक्षाओं (भविष्य की भूमिका/रोजगारों से जुड़ी) और सामान्य जागरूकता (मोबाइल, कम्प्यूटर, इंटरनेट की जानकारी) की पड़ताल भी करता है। इसके निष्कर्ष स्पष्टतः वैसे ही रहे जैसा कि अनुमान था। आरंभिक शिक्षा के स्तर पर बच्चों के सीखने में गंभीर खामियों के मौजूद रहते बड़ी आयु वर्ग के सीखने में किसी अनअपेक्षित बदलाव की उम्मीद रखना एक मुगालता होगा।

यह सर्वेक्षण भारत के 24 राज्यों के 28 ग्रामीण जिलों के 30,000 युवाओं तक सीमित है। फिर भी, जिस तरीके से इसके निष्कर्षों की प्रस्तुति व व्याख्या की गई है और नीतियों के लिए जो निहितार्थ सुझाए गए हैं, यह भारत के सभी बच्चों के सीखने को लेकर एक अतिरंजनापूर्ण निर्णय देने जैसा प्रतीत होता है। इस बात की गवाही प्रिंट तथा इलेक्ट्रॉनिक, दोनों माध्यमों में आए असर के निष्कर्षों पर आधारित आलेखों के यह शीर्षक दे रहे हैं- ''असर 2017 दिखाता है कि भारत की माध्यमिक शिक्षा बुनियादी कौशल विकसित करने में विफल हो रही है,'' हर दो भारतीय छात्रों में से एक अपनी कक्षा से तीन कक्षा पीछे की पुस्तकें भी नहीं पढ़ सकता,'' तथा ''हम अर्द्धशिक्षित लोग (नंदा 2017; घोष एवं बन्दोपाध्याय 2018; भगत 2015)।

इस आलेख के जरिए मेरा मकसद, असर का उपयोग एक प्रासंगिक संदर्भ बिन्दु के तौर करते हुए, सीखने को लेकर बड़े पैमाने पर किए गए आकलनों में प्रस्तुत आंकड़ों के अध्ययन व उनकी व्याख्या को लेकर पेश आने वाली जटिलताओं को रेखांकित करना है। भारत में स्कूली शिक्षा को लेकर एक लोकप्रिय विमर्श तैयार करने में लगभग एक दशक से इसका योगदान रहा है अतः इसे सावधानीपूर्वक देखने की आवश्यकता है।

मूल्यांकन के भ्रामक परिणाम

शुरुआत करने के लिए आवश्यक है कि हम बड़े पैमाने पर किए गए आकलनों को लेकर दुनियाभर के शोधार्थियों द्वारा जताई गई चिंताओं से अवगत हो लें। किसी भी तरह का शैक्षणिक मापन खास किस्म की क्षमताओं का महज एक अनुमान भर होता है। लम्बाई अथवा वजन सरीखे भौतिक लक्षणों के मापन के लिए अपनाए गए मापदंड, सोचने-विचारने व क्षमताओं जैसी मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन में समान रूप से लागू नहीं किए जा सकते। ज्यादा से ज्यादा कोई, कुछ साक्ष्यों पर आधारित संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अनुमान लगाने का प्रयत्न कर सकता है लेकिन सीखने के सटीक अंतिम कारण बताने का दावा नहीं कर सकता।

आकलन के सभी उपकरणों (टूल्स) की सीमाएं होती हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत आंकड़े भले ही भरोसेमंद और जायज हों, फिर भी वे सीखने से संबंधित कुछ निश्चित धारणाओं के आधार पर एक आंशिक तस्वीर ही पेश करते हैं। ऐसे हर उपकरण के पास सीखने का एक अंतर्निहित सिद्धांत होता है, और उस सिद्धांत पर आधारित एक खास किस्म के साक्ष्य को पकड़ने का प्रयास होता है। कुछ के लिए, निष्कर्ष अपने-आप में सीखने का उचित संकेतक होगा जबकि अन्य के लिए, परिणाम तक पहुंचाने वाली प्रक्रियाएं संभवतः अधिक मूल्यवान होंगी। ऐसे आकलन सिर्फ उन क्षमताओं को माप सकते हैं, जो वस्तुनिष्ठ अभिव्यक्ति तथा मानकीकृत परिमाणन प्रकट करती हैं। इसके साथ यह एक तथ्य है कि ऐसे आंकड़ों को एक निर्दिष्ट समयावधि में जुटाया जाता है और जवाब देने वालों के साथ सहजता विकसित करने अथवा उन्हें अपने उत्तर आसानी से तैयार करने की स्थिति तक पहुंचने देने पर कम जोर दिया जाता है।

इन सर्वेक्षणों की व्यापकता, इनका प्रचार तथा गुणवत्तायुक्त शिक्षा की धारणा व जवाबदेही से इनका संबंध जोड़ने से शिक्षकों पर ''परीक्षा के लिए पढ़ाने'' तथा परिणामस्वरूप स्कूलों पर परिणाम देने के लिए भारी दबाव आ जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि, ये छात्रों के सीखने को दर्शाते/प्रकट करते हुए न सिर्फ छात्रों पर बल्कि शिक्षकों, स्कूलों तथा व्यापक शिक्षा प्रणाली पर भी टिप्पणी करते हैं। नतीजतन सीखने का अर्थ इन परीक्षणों में पूछे जाने वाली चीजों तक सीमित रह जाने व गुणवत्ता को मात्र छात्रों के प्रदर्शन के बराबर मान लिए जाने के रूप में सामने आता है।

अंतर्राष्ट्रीय परीक्षण एक कदम और आगे जाते हैं और, दुनिया भर के बच्चों को क्या जानना तथा संभालना आना चाहिए इसे लेकर महत्वपूर्ण वक्तव्य देते हैं। हालांकि, उनकी वैश्विक स्वीकृति तथा प्रासंगिकता को लेकर कोई आश्वस्त नहीं है। चाहे वे :

> ''इस तरह के किसी महत्त्वपूर्ण ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हों, जिसे दुनिया के हर जगह के बच्चों को नागरिक के तौर पर पनपने के लिए जानने की जरूरत होती है?'' (सौडियन 2011 : 190) ''अगर सवाल सिर्फ मूल्यांकन पद्धति की क्षमता पर हैं- उनके मकसद और प्रभावों पर नहीं हैं, तो ऐसी बहसें खत्म होने की बजाय प्रासंगिक बनी रहेंगी।'' (ब्रॉडफुट 1996:13-14)

दुर्भाग्य से, बड़े पैमाने किए गए आकलनों पर होने वाली बहसें आमतौर पर परीक्षणों की क्रियाविधि, नमूना लेने की योजना, प्रयुक्त उपकरणों की प्रभावकारिता, के आसपास ही घूमती रहती हैं। सीखने पर उनके प्रभावों, कक्षाओं में शैक्षणिक चर्चाओ, शिक्षकों की भूमिका तथा पूर्व ज्ञान के महत्त्व, बच्चे के अनुभवों पर बहुत चर्चा नहीं होती।

असर के आंकड़े इस तरह प्रदर्शित व व्याख्यायित किए जा रहे हैं कि उनमें ऊपर उल्लिखित सभी समस्याएं मौजूद हैं। इसके अलावा असर की कार्यप्रणाली की कुछ गंभीर आलोचना भी की गई है। जैसे कि कागज-पैन की जगह मौखिक परीक्षण, स्कूल आधारित की जगह घर आधारित सर्वेक्षण, शिक्षकों की बजाय स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं द्वारा

आंकड़ों का संग्रह आदि (कुमार 2015)। यह समझना थोड़ा मुश्किल है कि बच्चों को अजनबी स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं के ऐसे अनअपेक्षित सवालों का जवाब क्यों देना चाहिए, जिनके आधार पर सहजज्ञान से बच्चे जान जाते हैं कि उनका मूल्यांकन किया जा रहा है।

हालांकि सर्वेक्षण की पद्धति से कहीं अधिक महत्वपूर्ण छिपा व प्रकट वह संदेश है जिसे यह संप्रेषित करती है। इसकी पड़ताल सजगता से किए जाने की जरूरत है। अगले खंड में कुछ ऐसे संदेश और उन्हें सतही तौर पर न लेने की चेतावनी भी दी गई है।

सार्वजनिक-निजी - द्विभाजन

ऐसा कहा जा रहा है कि ''शिक्षातंत्र बिना कपड़ों के शक्तिशाली सम्राट जैसा बन गया है। हर कोई देख सकता है कि वह नंगा है लेकिन कोई ऐसा कहना नहीं चाहता'' (चौव्हाण 2018 : 10)। असर 2017 ने एक बार फिर सार्वजनिक स्कूलों के विरुद्ध निजी स्कूलों को ढाल बनाया है। यह सार्वजनिक स्कूलों की तुलना में निजी स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों के शिक्षण नतीजों को बेहतर बताता है। असर द्वारा प्रस्तुत इस द्विभाजन ने लोकप्रिय भावना और राजनीतिक इच्छा को दो शिविरों में ध्रुवीकृत किया है।

इस मुद्दे के परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि निजी व सार्वजनिक स्कूलों में आंतरिक विभेद किया गया है। संसाधनों, बुनियादी ढांचे, शिक्षकों की गुणवत्ता, लिए जाने वाले शुल्क आदि को लेकर दोनों जगहों पर एक स्पष्ट आंतरिक पदानुक्रम है। कोई ऐसे निश्चित आंकड़े नहीं हैं, जो यह दर्शाते हों कि सभी सार्वजनिक स्कूल खराब हैं (बच्चों के सीखने के बेहद खराब स्तर से ग्रस्त व शिक्षकों की अनुपस्थिति) और सभी निजी स्कूल अच्छे हैं। अपने छात्रों को वे जो सिखा रहे हैं उस लिहाज से तो कम से कम नहीं ही हैं। यह बताया गया है कि सीखने को लेकर किए गए आकलन में निजी स्कूल के बच्चों ने सरकारी स्कूल के बच्चों से बेहतर प्रदर्शन किया है। हालांकि, ऐसी व्याख्या स्वीकार कर ली गई है लेकिन उनमें पढ़ने वाले बच्चों की पृष्ठभूमि में मौजूद अंतर को पर्याप्त तवज्जो नहीं दी गई है। इसके अलावा, अध्ययन ने यह भी दर्शाया है कि सीखने के परिणामों के मामले में बच्चों के लिए निजी स्कूल सरकारी स्कूलों की तुलना में कुछ सार्थक नहीं जोड़ते (करोपदी 2014)। इसके अतिरिक्त, सीखने को लेकर ऐसे सर्वेक्षणों की दृष्टि बहुत संकीर्ण है, जो अनिवार्यतः रट्टा आधारित है तथा उच्च क्रम की कुशलताओं का आकलन नहीं करती (सारंगपाणी 2009; सारंगपाणी व विंच 2010)। बहुस्तरीय स्कूली व्यवस्था में स्कूल की स्थिति सार्वजनिक अथवा निजी स्कूल में पढ़ रहे बच्चों की विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों के साथ जुड़ी होती है। हालांकि, सरकारी स्कूलों में मुफ्त शिक्षा ले रहे बच्चे अपेक्षाकृत एक अधिक वंचित पृष्ठभूमि से आते हैं।

इस मुद्दे को भारत समेत दुनिया भर में दिखाई दे रहे रुझानों के संदर्भ में समझने की जरूरत है।

(i) 1990 की शुरुआत से ही भारत सरकार ने 'स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट प्रोग्राम पालिसी' (संरचनात्मक समन्वय कार्यक्रम नीति) के तहत स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे सामाजिक क्षेत्रों में अपनी वित्तीय जिम्मेदारियों को घटाना शुरू कर दिया।

(ii) गैर-सार्वजनिक संगठनों की संख्या में बेतहाशा बढ़ोतरी हुई है। परोपकारिता से जुड़ी संस्थाओं से लेकर विशाल लाभ वाले कॉरपोरेट हाउस तक शिक्षा में निवेश कर रहे हैं।

(iii) नव-उदारवादी सुधारों की वर्तमान लहर, जो सार्वजनिक संस्थानों के लिए नये निजी प्रबंधन के नियम-कायदे अपनाने की हिमायती रही है, वही जवाबदेही तथा दक्षता जैसे शब्दों को स्वर दे रही है तथा इस प्रक्रिया में सार्वजनिक स्कूलों के पास दोनों में से कुछ भी नहीं होने का आरोप लगा रही है।

(iv) बारंबार ऐसे परीक्षण किए जा रहे हैं, जिनमें बच्चों के सीखने पर सतत निगरानी रखी जा रही है।

(v) बच्चों के निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 (आरटीई) के तहत विविध, विषम तथा बड़े पैमाने पर वंचित पृष्ठभूमि के बहुत सारे बच्चों ने स्कूलों में प्रवेश पाया है। कहने की जरूरत नहीं है कि ऐसे बच्चे को उन्हें उपलब्ध स्कूलों तथा लाचार पारिवारिक परिस्थितियों के चलते सीखने में अधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

इसलिए, इस तरह के व्यापक दावों की व्याख्या सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए कि निजी स्कूलों के बच्चे सीखने को लेकर बेहतर परिणाम प्रदर्शित करते हैं तथा निजी स्कूल जवाबदेह शिक्षकों के साथ-साथ कम लागत वाले व प्रदर्शन से संचालित होने वाले स्कूल होते हैं। इस तरह के सरलीकरणों की समस्याएं दस्तावेजों में ठीक से दर्ज हो चुकी हैं।

हालांकि, इन आरोपों ने राज्य-समर्थित सार्वजनिक शिक्षा को बड़ी क्षति पहुंचायी है, खासकर आरटीई के दो केंद्रीय प्रावधानों- ''निजी स्कूलों को मान्यता पाने के लिए ढांचागत पूर्व शर्तों'' संबंधी प्रावधान और ''कक्षा आठ तक फेल नहीं करने की नीति'' के प्रावधान को। असर के आंकड़ों की व्याख्या से उभरे दो अंतर्निहित आरोप निम्नानुसार हैं।

आरोप 1: बेहतर निवेश से, बेहतर परिणाम प्राप्त नहीं होता/कमजोर निवेश बेहतर परिणाम देता है।

यह विचित्र प्रतीत हो सकता है। लेकिन गरीबों के लिए निजी स्कूलों के समर्थक असर के आंकड़ों के हवाले से बिलकुल यही दावा कर रहे हैं। वे कहते हैं कि, उनके स्कूल आरटीई कानून (धारा 18 और 19) में सूचीबद्ध बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ हैं और फिर भी उनके बच्चे सीख रहे हैं, जैसा कि शिक्षण सर्वेक्षणों में व्यक्त हुआ है। इस तरह निजी स्कूलों को नियमों में ढील देने की बात को आगे ले जाने के लिए इन आंकड़ों को उद्धृत किया जाता है। आरटीई कानून इस बात पर बल देता है कि निजी स्कूलों को मान्यता हासिल करने के लिए बुनियादी ढांचा, कक्षा-कक्ष, शौचालय एवं योग्य शिक्षक जैसी चीजों में निवेश करना जरूरी है। निजी स्कूलों के बेहतर प्रतीत होते इन परिणामों का उपयोग कानून के इस पक्ष पर सवाल उठाने के लिए किया जाता है। जहां सार्वजनिक स्कूलों की शिक्षा को उसकी अपनी खामियों से बेखबर होना तथा असंतोषजनक दर्शाया जाता है, वहीं निजी स्कूल व्यवस्था को प्रबुद्ध होने, तथा अपनी मजबूतियों और समृद्धि से अवगत दिखाया जाता है।

यह दावा दो स्तरों पर समस्याग्रस्त है। अव्वल, तो इसमें बच्चों के शैक्षिक और सामाजिक संदर्भों तथा उनके एक-दूसरे से संबंधों की सूक्ष्म समझ का अभाव है, जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है। दूसरे, यह स्थिति अनैतिक है और सभी बच्चों (अनिवार्यतः गरीब) के न्यायसंगत, अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा तक पहुंच बनाने के अधिकारों का उल्लंघन करती है। अकादमिक और ढांचागत- दोनों स्तरों पर, बुनियादी जरूरतों से बेपरवाह शिक्षा गरीब बच्चों के लिए किसी भी तरह से जायज़ नहीं ठहराई जा सकती।

आरोप 2 : बच्चों को फेल करना उनका सीखना सुनिश्चित करता है।

सीखना सुनिश्चित करने के लिए बच्चों को फेल करने को लेकर असर रिपोर्ट जोर-शोर से पैरवी करती रही है, जो कि आरटीई कानून (धारा 16) में निर्दिष्ट कक्षा 8 तक के बच्चों को फेल न किए जाने संबंधी प्रावधान के विरुद्ध है। रिपोर्ट के दावों के मुताबिक, इस प्रावधान ने बच्चों के सीखने का स्तर बदतर कर दिया है।

जब कोई बच्चा किसी कक्षा में रोका जाता है, तो यह बच्चे के अभिभावकों के साथ-साथ शिक्षकों के लिए भी शुरुआती चेतावनी का संकेत होता है कि बच्चे को अतिरिक्त मदद की दरकार है। हमारी मौजूदा प्रणाली में बच्चा, बिना किसी को यह पता चले कि, उसे मदद चाहिए, कक्षा आठ तक पहुंच सकता है। (वाधवा 2018 : 17)

यह सही नहीं है। आरटीई ने आकलन के एक ऐसे व्यापक तथा गतिशील तरीके की कल्पना की थी, जिसका इरादा बच्चों की सीमाओं के माध्यम से उनका सतत मार्गदर्शन करना था। इसके अतिरिक्त, इस प्रावधान का मकसद पढ़ाई छोड़ने की संभावना वाले बच्चों को रोकना तथा यह सुनिश्चित करना था कि बच्चा पूरी आरंभिक शिक्षा का चक्र पूरा होने तक तक एक भयमुक्त व धमकीमुक्त परिवेश में टिका रहे (नवानी 2015)।

दिलचस्प है कि, हाल में भारतीय प्रबंधन संस्थान अहमदाबाद के दो अध्येताओं द्वारा एक अध्ययन किया गया, जिसमें असर के 10 साल के राष्ट्रीय स्तर के आंकड़ों का विश्लेषण शामिल था। इस अध्ययन ने- कक्षा 1 से 8 के बीच अपने स्वतः प्रोन्नति पा जाने से शिक्षा को क्षति पहुंची है- इस दावे से अपना मतभेद जाहिर किया है। शोधार्थियों ने पाया है, कि 2010 के पहले से ही सीखने का स्तर गिर रहा था, और यह भी कि 2010 के बाद कुछ राज्य इसे सुधारने अथवा कम से कम गिरावट रोकने में समर्थ हुए थे। चार साल (2009-12) के अध्ययन के दौरान कक्षा 3 के छात्रों की घटाने की क्षमता का अध्ययन करने के दौरान शोधकर्ताओं ने यह पाया कि खास तौर पर जो विद्यार्थी फेल न करने की नीति के तहत पढ़ाए गए थे, वे उसी स्तर का प्रदर्शन करने में समर्थ थे, जैसा कि वे छात्र करने में समर्थ थे जिन्हें कक्षा 7 में पहुंचने तक आंशिक रूप से फेल करने वाली व्यवस्था के तहत वही (घटाने की) अवधारणा सिखाई गई थी। (सराफ और देशमुख 2018)।

असर द्वारा एक अन्य अंतर्निहित आरोप उन स्कूली शिक्षकों के संबंध में है, जिन्हें प्रशिक्षण दे कर परिणाम देने योग्य बनाया जा सकता है, और जो अनुबंध पर रखे जाते हैं तथा छठे वेतन आयोग के अनुसार वेतन पाने वाले सार्वजनिक स्कूली शिक्षकों की तुलना में काफी कम वेतन पाते हैं। इसका उल्टा भी सच हो सकता है। सुरक्षित नौकरी तथा ज्यादा वेतन उठाने वाले सरकारी स्कूल शिक्षक प्रायः स्कूल से गायब रहते हैं तथा बच्चों की शिक्षा को लेकर उनकी कोई जवाबदेही नहीं होती। हालांकि, इस दलील की खामियों को भी दस्तावेजों में ठीक से दर्ज किया जा चुका है। यहां उल्लेख की जरूरत नहीं है, कि यह बात शिक्षकों की पेशेवर निष्ठा तथा उनके मनोबल को क्षति पहुंचाती है (जैन और सक्सेना 2010)।

अन्य चिंताएं

इन अहम चिंताओं के अतिरिक्त, रिपोर्ट की प्रस्तावना में असर टीम के प्रमुख सदस्यों के कुछ आलेख दिये गए हैं। ये आलेख आंकड़े इकट्ठा करने व विश्लेषण करने के दौरान होने वाले अनुभव से उत्पन्न प्रासंगिक मुद्दों को उठाते हैं। हालांकि, इनकी पड़ताल भी इनके गुप्त व प्रकट दोनों निहितार्थों के संदर्भ में सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए।

सरकारी तंत्र की बर्खास्तगी : रिपोर्ट इकतरफा ढंग से बेशर्मी के साथ औपचारिक शिक्षण संस्थानों (खासकर सार्वजनिक संस्थानों) की निंदा करती है। डिजिटल प्रौद्योगिकी में भरोसे को दोहराती तथा संस्थानों में बदलाव के लिए सुधारवादी जज्बे वाले उत्साही व्यक्तियों को जगह देने की बात करती है। यह दावा करती है कि ''समय-समय पर सरकारों तथा शैक्षिक निकायों ने स्वयं घोषित किया है कि, शैक्षिक संस्थान एवं परीक्षातंत्र - कम से कम पूर्वस्नातक स्तर तक - विश्वास व भरोसे के काबिल नहीं रह गए हैं।'' तथा सीखने के लिए ऐसी नई संरचनाएं सुझाते हैं, जहां ''स्थानीय स्तर पर रखे गए शिक्षक छात्रों की मदद करते हैं तथा जहां, सीखने वाले समूह, समूह का व साथियों के साथ मिलकर सीखने की प्रक्रियाओं का उपयोग सीखने के लिए कर सकते हैं'' (चौव्हाण 2018 : 10)। इसी तरह इसकी दलील है कि :

> स्कूल अथवा कॉलेज के स्तर पर हमारे यहां कई संस्थान हैं लेकिन, प्रायः ये संस्थान वह सब नहीं देते, जिनकी इनसे उम्मीद की जाती है। लोगों का सामना उनके सपनों तथा इच्छाओं से होता है और तब वे आगे बढ़ने के लिए नए अवसर रचते हुए इस अंतराल को मिटाते हैं। (बनर्जी 2018:14)।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि, सीखने के संभव तरीकों में से एक तरीका सुझाने वाला औपचारिक शिक्षण तंत्र अथवा सार्वजनिक संस्थान खुद पाठ्यचर्या, शिक्षण पद्धति संबंधी और काम-काजी दुनिया में अप्रासंगिक हो जाने जैसे मुद्दों से जूझ रहे हैं। फिर भी कुछ लोगों के नैतिक आग्रहों से उम्मीद लगाने की बजाए उनके महत्व को पूरी तरह नकार देना निरर्थक होगा। यह खासतौर पर, तब और प्रासंगिक हो जाता है, जब राज्य के सहयोग पर निर्भर रहने वाले लाखों बच्चों तथा युवाओं के भविष्य, नेक इरादा रखने वाले कुछ व्यक्तियों की मर्जी पर छोड़ देने का प्रस्ताव किया जाता है। एक तरफ, राज्य को जवाबदेह ठहराने के बदले खारिज़ कर देना तथा मजबूत करने जगह बदल दिया जाना, ठीक वैसा है जैसा हड़बड़ी में एक अर्धविकसित अंग को समाप्त कर देना है। दूसरी ओर, गरीब लोगों के कल्याण को या तो अच्छे व्यक्तियों की दया अथवा बाजार के निजी खिलाड़ियों की सनक के भरोसे छोड़ दिया जाना है।

कुछ के लिए स्कूल, बाकी के लिए कौशल : यह दिलचस्प है कि, औपचारिक शिक्षा केवल उन्हीं लोगों के लिए निरर्थक बताई जा रही है, जो इसे समय, इसकी लागत व प्रासंगिकता- दोनों रूपों में वहन नहीं कर सकते। ऐसे बच्चों के लिए औपचारिक स्कूल के विकल्प के तौर पर व्यावसायिक कौशल सुझाया गया है।

> अंततः, औपचारिक शिक्षा सभी के लिए नहीं है तथा सरकार औपचारिक स्कूली शिक्षा के विकल्प के तौर पर व्यावसायिक कौशल को बढ़ावा देने के लिए बहुत सारी ताकत झोंक रही है (वाधवा 2018:15)।

अब यह भी अच्छी तरह स्थापित हो चुका है कि स्कूलों में शुरू हुए व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का बच्चों की जिन्दगी के वर्ग, जाति जैसे आयामों से मजबूत संबंध है। गरीब बच्चे ऑटोमोबाइल मरम्मत, खुदरा व्यापार तथा सुरक्षा संबंधी पाठ्यक्रम ले रहे हैं तो लड़कियां फैशन, सौंदर्य तथा बालों की देखभाल के क्षेत्र में ठेली जा रही हैं। इन विषयों के अंकों को विश्वविद्यालय के आवेदनों में नहीं गिना जाता, जो उच्च शिक्षा संस्थानों में इनके प्रवेश को रोकता है।

प्रभावों की बहुतायत : रिपोर्ट बेतुके बयान दे देने की एक ऐसी प्रवृत्ति भी दर्शाती है, जो अनुभव जनित होने की बजाए प्रभाववादी अधिक है उदाहरण के लिए, पाठ्यक्रम पुराने पड़ जाना, कर्मचारियों की कमी होना, उच्च शिक्षण संस्थानों की डिग्रियों व प्रमाणपत्रों का महत्वहीन हो जाना आदि। इस तरह के बयान अनौपचारिक जगहों पर तो दिए जा सकते हैं किन्तु उन्हें एक सार्वजनिक दस्तावेज में व्यक्त करना थोड़ी अपरिपक्वता दर्शाता है। सब जानते हैं कि संस्थानों की गुणवत्ता अलग-अलग स्कूलों, बोर्डों और विश्वविद्यालयों में अलग-अलग होती है और उनके बारे में चलताऊ ढंग से कोई निर्णय ले लेना उचित नहीं कहा जा सकता। प्रमाणपत्रों, डिग्रियों आदि की थोक में निंदा के बाद रिपोर्ट युवाओं के लिए एक मानकीकृत परीक्षण का प्रस्ताव करती है ताकि, संभावित नियोक्ताओं के लिए उनकी क्षमताओं के विश्वसनीय साक्ष्य दर्शाए जा सकें।

अनेक विरोधाभास

रिपोर्ट में अनेक विरोधाभास भी शामिल हैं। एक ओर, यह बताती है कि लगभग एक चौथाई युवा (तथा एक चौथाई से अधिक लड़कियां) आर्थिक कारणों से अपनी पढ़ाई बंद करने को बाध्य हुए हैं। जबकि, दूसरी तरफ, यह सरकारी स्कूलों के विरुद्ध मुनाफे वाले निजी स्कूलों को रखकर ऐसे बच्चों के लिए सरकार समर्थित शिक्षा पर सवाल उठाती है। आगे यह बताती है कि, स्कूलों में फेल होने के कारण पिछले साल 16 प्रतिशत लड़कों ने स्कूल छोड़ दिये। इसके बावजूद, यह चाहती है कि फेल न करने की नीति को आरटीई से खत्म कर दिया जाय। इस विरोधाभास को आगे बढ़ाते हुए यह कहती है कि, ''स्कूल में होने का महत्व कुछ साल की शिक्षा पूरी करने से कही अधिक होता है और वह यह है कि इससे युवाओं में एक हद तक आत्मविश्वास पैदा हो जाता है।'' (वाधवा 2018 : 18)। अगर ज्यादा सालों तक स्कूलों में बने रहना वंचित तबके के बच्चों में आत्मविश्वास पैदा करता है, तो फिर बच्चों को अपमानित

करने व इस वजह से स्कूल छोड़ देने पर मजबूर करने वाली फेल करने वाली नीति का समर्थन क्यों किया जाना चाहिए? रिपोर्ट यह भी बताती है कि 26 प्रतिशत युवाओं ने पिछले सप्ताह में कम्प्यूटर का इस्तेमाल किया, 59 प्रतिशत ने कभी नहीं किया तथा 64 प्रतिशत कभी इंटरनेट तक पहुच नहीं बनी। इसमें यह भी बताया गया है कि, लड़कों की तुलना में लड़कियों और युवतियों की कंम्प्यूटर व इंटरनेट तक पहुंच बहुत कम है। बावजूद इसके, एक ऐसे देश में, जहां कम्प्यूटर और इंटरनेट तक पहुंच को लेकर बिजली बड़ी चिंता का कारण है, यह डिजिटल साक्षरता को एक व्यावहारिक विकल्प मानती है।

निष्कर्ष

इस आलेख का मकसद असर के योगदान और महत्त्व को महज नकारना नहीं है बल्कि, इस ओर ध्यान आकर्षित करना है कि, इस तरह के आकलन प्रायः मानवीय क्षमताओं तथा उद्यमिता की अपूर्ण व विकृत तस्वीर पेश करते हैं। पिछले कई सालों से अपने निराशाजनक आंकड़ों के जरिए असर रिपोर्टें जिन दो अहम बिन्दुओं पर ध्यान आकर्षित करती रही है वे हैंः महज नामांकन सीखना सुनिश्चित नहीं कर देता और सीखने में मूलभूत कौशल का महत्त्व। हालांकि, इसके जो आंकड़े, न तो व्यापक हैं और न ही सबका प्रतिनिधित्व करते हैं, उनका उपयोग बिना सोचे-समझे सार्वजनिक स्कूली व्यवस्था को लेकर निष्फलता के दावे करने और उसे निरर्थक साबित करने के लिए किया जा रहा है। जैसे- सरकारी स्कूल के शिक्षकों की प्रतिबद्धता और दक्षता पर सवाल उठाने के लिए और उस आरटीई की मूल धारणा को चुनौती देने के लिए जिसका उद्देश्य सभी बच्चों को आठ वर्ष तक भयमुक्त और धमकी विहीन माहौल में न्यायसंगत शिक्षा देने को बढ़ावा देना है। निश्चय ही ये निहितार्थ चिंताजनक हैं और गहरी पड़ताल, संवेदनशील व्याख्या तथा सूक्ष्म परीक्षण की मांग करते हैं अन्यथा ये सार्वजनिक शिक्षा की भलाई के नाम पर कहीं अधिक क्षति पहुंचा रहे होंगे। ◆

(ईपीडब्ल्यू के 24 फरवरी, 2018 अंक से साभार)

लेखिका परिचय : टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोश्यल साइंसेज, मुम्बई के स्कूल ऑफ एज्युकेशन में अध्यक्ष हैं। आरंभिक शिक्षा में एम. ए. कोर्स की समन्वयक हैं। शिक्षा के समाजशास्त्र, पाठ्यचर्या, शिक्षाशास्त्र और आकलन संबंधी मुद्दों में गहरी रुचि है। शिक्षा संबंधी विभिन्न मुद्दों पर तमाम पत्रा-पत्रिकाओं में सतत लेखन।

संपर्क : dishanawani@yahoo.com

संदर्भ :

Banerji, Rukmini (2018): "Opportunities and Out comes," Annual Status of Education Report (Rural) 2017: Beyond Basics, ASER Centre, New Delhi.

Bhagat, Chetan (2015): "We the Half Educated People," Times of India, 26 January, https://blogs.timesofindia.indiatimes.com/toi-editpage/we-the-half-educated-people/.

Broadfoot, Patricia (1996): Education, Assessment and Society: A Sociological Analysis, Buckingham: Open University Press.

Chavan, Madhav (2018): "Giving the Emperor New Clothes," Annual Status of Education Report (Rural) 2017: Beyond Basics, ASER Centre, New Delhi.

Ghosh, Aniruddha and Sujan Bandyopadhyay (2018): "ASER 2017 Shows India's Secondary Education Sector Is Failing to Impart Basic Skills, "Wire, 20 January, https://thewire.in/215653/aser- 2017-shows-indias-secondary-education-sectorfailing-impart-basic-skills/.

Jain, Manish and Sadhana Saxena (2010): "Politics of Low Cost Schooling and Low Teachers Salary," Economic & Political Weekly, Vol 45, No 18, pp 79-80.

Karopady, D D (2014): "Does School Choice Help Rural Children from Disadvantaged Sections? Evidence from Longitudinal Research in Andhra Pradesh," Economic & Political Weekly, Vol 49, No 51, pp 46-53.

Kumar, Krishna (2015): "We Need a Real Learning Grid for India's Elementary Schools," Hindustan Times, 21 January, https://www.hindustantimes.com/ht-view/we-need-a-real-learninggrid-for-india-s-elementary-schools/story-qCMaOfeJhps1vXssHzhiGP.html.

Nanda, Prashant (2017): "One in Two Indian Students Can't Read Books Meant for Three Classes below: ASER," Livemint, 19 January, http://www.livemint.com/Education/WgtUkpjlzUPGhMMTg epGQM/One-in-two-Indian-students-cant-read-books-meant-for-two-cl.html.

Nawani, Disha (2015): "Rethinking Assessments in Schools," Economic & Political Weekly, Vol 50,No 3, pp 37-41.

Saraf, Ankit and Ketan Deshmukh (2018): "To Fail or Not to Fail?" unpublished research study, Indian Institute of Management, Ahmedabad.

Sarangapani, Padma M (2009): "Quality, Feasibility and Desirability of Low Cost Private Schooling," Economic & Political Weekly, Vol 44, No 43, pp 67-69.

Sarangapani, Padma M and Christopher Winch (2010): "Tooley, Dixon and Gomathi on Private Education in Hyderabad: A Reply," Oxford Review of Education, Vol 36, No 4, pp 499-515.

Soudien, Crain (2011): "Building Quality in Education: Are International Standards Helpful?" Contemporary Education Dialogue, New Delhi: Sage, pp 183-200.

Wadhwa, Wilima (2018): "Youth in India: The Present of Our Future," Annual Status of Education Report (Rural) 2017: Beyond Basics, ASER Centre, New Delhi.

मुख्य आवरण के चित्रकार...

हेनरी मूर (1898-1986) एक ब्रिटिश कलाकार थे। उन्हें उनकी पीतल की बनी अर्द्ध अमूर्त मूर्तियों के लिए जाना जाता है। मूर्तियों के अलावा मूर को द्वितीय विश्व युद्ध के विस्थापितों के रेखांकनों के लिए भी बहुत ख्याति मिली। उनके शिल्पों का विषय साधारणतया मानव ही रहा है मगर आकार में रिक्त अंतराल उनके आकारों को सबसे अलग पहचान देता है। आधुनिक कला के सर्वाधिक चर्चित रहे मूर्तिकार मूर का बीसवीं सदी के बहुत से मूर्तिकारों पर प्रभाव रहा है। ◆